अध्याय 1
गणित का इतिहास (History of Mathematics)

वर्ण	अंक	वर्ण	अंक	वर्ण	अंक
क	1	च	6	ट	11
ख	2	छ	7	ठ	12
ग	3	ज	8	ड	13
घ	4	झ	9	ढ	14
ङ	5	ञ	10	ण	15

हम पढ़ेंगे :

- अंक गणित (भारतीय अंकों का इतिहास)
- शून्य का आविष्कार
- स्थानीय मान
- दशमलव पद्धति
- वर्णांक प्रणाली
- भास्कराचार्य के अनुसार बीजगणित की व्याख्या
- रेखा गणित
- ज्यामिति शास्त्र
- π का मान
- त्रिकोणमिति
- बौधायन सूत्र
- वैदिक गणित में अभिनव कार्य
- विविध

1.1 भूमिका (Introduction)

गणित एक ऐसा विषय है जिसकी व्यापकता सार्व-भौम है। प्रकृति के अनगिनत व्यवहार गणित की सहायता से ही संभव है। गणित विज्ञान एवं तकनीकी का मेरूदण्ड है। अतः वेदांग ज्योतिष में ऋषि लगध ने लिखा है

यथा शिखा मयूराणाम् नागानाम् मणयो यथा।
तदवद् वेदांग शास्त्राणाम् गणितम् मूर्धनिस्थितम्॥

अर्थात् सभी वेदांग शास्त्रों के शीर्ष पर गणित उसी प्रकार सुशोभित है जैसे मोर के सिर पर शिखा तथा सर्प के फन पर मणि सुशोभित है।

गणित के इतिहास पर दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि गणित में भारत का योगदान अत्यंत विशिष्ट एवं विश्व प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से ही भारत में गणित की विभिन्न शाखाओं पर कार्य किया गया है। अंक गणित, गणित की प्रमुख शाखा है। दैनिक व्यवहार में इसका सर्वाधिक उपयोग है। जैसे घर, रसोई, बाजार... हम कहीं भी जावें वृत्त, आयत, वर्ग, अर्द्धवृत्त, शंकु, घन, त्रिभुज, चतुर्भुज, समान्तर रेखा, आदि के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। हमारा जीवन अंकविद्या में निमग्न है। प्रतिदिन सैकड़ों बार जोड़, घटाना, गुणा, भाग को काम में लेते हैं। वैज्ञानिक प्रगति का मूल आधार गणित ही है। संक्षेप में कहें तो बिन्दु व रेखा और इनके ही परिवर्तित रूप व विकसित रूप ही गणित है।

गणित विज्ञान में मुख्यतः तीन शाखाएँ हैं- अंक गणित, बीजगणित तथा रेखागणित। इस अध्याय में हम इन्हीं तीन शाखाओं के विकास का इतिहास व भारतीय योगदान की चर्चा करेंगे।

1.2 अंकगणित

अंक गणित का वैज्ञानिक रूप से विकास 500 से 1000 ई. के मध्य हुआ था। माना जाता है कि 10 आधार वाली संख्या पद्धति का विकास भारत में किया गया। ईसा से लगभग 1700 वर्ष पूर्व में 60 पर आधारित संख्या प्रणाली का उपयोग मैसोपोटामिया के उस समय व उसके बाद के शिलालेखों पर मिला है किन्तु तब शून्य का उपयोग नहीं किया जाता था। इस अवधि में विश्व प्रसिद्ध महान गणितज्ञ भारत में हुए थे। उनमें से प्रमुख हैं :

1. आर्यभट्ट (476 ई.स.)
2. वराहमिहिर (505 ई.स.)
3. ब्रह्मगुप्त (598 ई.स.)
4. भास्कराचार्य (600 ई.स.)
5. बौधायन

भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग 'गुप्तकाल' माना जाता है। यह भारतीय संस्कृति के विकास का युग था। इस युग में भारतीय ज्योतिष गणित अपनी पराकाष्ठा पर था। इसका श्रेय उस समय के उक्त विद्वानों को जाता है। आइए, इन विद्वानों का संक्षिप्त परिचय भी जानें।

1. आर्यभट्ट : आर्यभट्ट का जन्म कुसुमपुर (पटना) में 476 ई. में हुआ था। इन्होंने अपने ग्रंथों में गणितीय सिद्धांतों का स्पष्ट व सटीक प्रतिपादन किया है। इनकी गणनाएँ आधुनिक गणनाओं से मेल खाती हैं। इन्होंने 499 ई. में 23 वर्ष की अवस्था में ही 'आर्यभटीय' महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की थी। आर्यभटीय ग्रंथ में संख्याओं को अक्षर द्वारा व्यक्त करने की संकेत लिपि, वर्गमूल, घनमूल निकालने की विधि, क्षेत्रफल, आयतन आदि निकालने की विधि का उल्लेख है।

2. वराहमिहिर : वराहमिहिर के पिता का नाम आदित्यदास तथा माता का नाम सत्यवती था। आदित्य दास गणित एवं ज्योतिष के विद्वान थे। उज्जैन से 20 किलोमीटर पूर्व की ओर स्थित कापित्थका (कायथा) ग्राम में इनका निवास था। मध्यप्रदेश के लिये गौरव की बात है कि आचार्य वराहमिहिर द्वारा अपने पिता की स्मृति में स्थापित 'कापित्थका गुरूकुल' 700 वर्षों तक गणित का विख्यात केन्द्र रहा है। गणित के इतिहास में यह 'उज्जैन स्कूल' के नाम से जाना जाता है।

कापित्थका गुरूकुल का गणित के विकास में अति महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रह्मगुप्त महावीराचार्य एवं भास्कराचार्य इसी गुरुकुल के उद्भट गणितज्ञ रहे हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि लगभग 770 ई. सदी में उज्जैन के एक हिन्दू विद्वान कंक को बगदाद के प्रसिद्ध दरबार में अब्बा सईद खलीफा अलमन्सूर ने आमंत्रित किया था। इस प्रकार हिन्दू अंकन पद्धति अरब पहुँची। कंक ने हिन्दू ज्योतिष विज्ञान तथा गणित अरब के विद्वानों को पढ़ाया। कंक की सहायता से उन्होंने ब्रह्मगुप्त के 'ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' का अरबी में अनुवाद किया।

फ्रांसीसी विद्धान एम.एफ. नाड की खोज यह प्रमाणित करती है कि सीरिया में सातवीं सदी के मध्य में हिन्दू अंक अच्छी तरह ज्ञात थे तथा उनकी सराहना की जाती थी।

3. ब्रह्मगुप्त : ज्योतिष व गणित शास्त्र के महान विद्वान ब्रह्मगुप्त का जन्म राजस्थान के भीनमाल नामक स्थान में 598 ई. में हुआ था। इन्होंने ''ब्रह्मस्फुट सिद्धांत'' और 'खण्डखाद्य' की रचना की है। अरब देशवासियों को गणित व ज्योतिष का ज्ञान सबसे पहले ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों से ही मिला है।

अंकगणित भाग में ब्रह्मगुप्त ने घनमूल, गणित की चार विधियां, वर्ग, घन, भिन्न, अनुपात, शून्य, अनंत आदि प्रकरणों पर सिद्धांतों की रचना की है।

4. भास्कराचार्य : सिद्धांत शिरोमणि के रचयिता विश्वविख्यात भास्कराचार्य का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था। इनका जन्म 1114 ई. में हुआ था। भास्कराचार्य ने 36 वर्ष की अवस्था में 'सिद्धांत शिरोमणि' की रचना की थी। उसमें गणिताध्याय और गोलाध्याय दो भाग हैं। इनकी दूसरी रचना 'लीलावती' है जिसमें अंक गणित, क्षेत्रफल, घनफल, ब्याज आदि का विवरण है। उस समय पाटी पर लिखकर या अंगुली से मिट्टी में लिखकर पढ़ाया जाता था। लीलावती-पाटीगणित है।

लीलावती ग्रंथ में पाई का मान, त्रिभुजों और चतुर्भुजों के क्षेत्रफल, गोलों के आयतन आदि के प्रश्न तथा उत्तर दिए गए हैं।

भास्कराचार्य की रचनाओं का अनुवाद अकबर ने करवाया, अंग्रेजी भाषा में कोलब्रुक, टेलर ने अनुवाद किया है। भारतीय ज्योतिष व गणित की ध्वजा कीर्ति आचार्य आर्यभट्ट ने फैलाई- उसको और अधिक मजबूती के साथ यूरोप व पश्चिमी देशों तक फैलाने का कार्य भास्कर की रचनाओं ने किया।

5. बौधायन : भारत में वैदिक काल में ज्यामिति का उद्‌गम वैदिक पूजा के लिए आवश्यक, भिन्न भिन्न प्रकार की वेदियों और अग्नि-कुण्डों के निर्माण कार्य से हुआ। वेदी बनाने में आवश्यक मापन करने के लिए एक रस्सी, जिसे सुल्व कहते थे, का प्रयोग करते थे। 800 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक की रचित सुल्व सूत्रों (Sulba sutras) में वैदिक ऋषियों के ज्यामिति के ज्ञान के संबंध में बहुत अधिक सूचनाएँ हैं। **बौधायन सुल्व सूत्र** (लगभग 800 ईसा पूर्व) में, जो इन सभी ज्ञात सुल्व सूत्रों में सबसे पुराना है, तथाकथित पाइथागोरस प्रमेय का प्रकथन इस रूप में मिल जाता है कि 'किसी आयत का विकर्ण स्वयं दोनों (क्षेत्रफलों) को उत्पन्न करता है जो कि इसकी दोनों भुजाओं के द्वारा उत्पन्न होते हैं। सुल्व-सूत्रों में उल्लेखित रचना-विधियों से पाइथागोरस प्रमेय की उपपत्ति मिल जाती है। सुल्व-सूत्रों में, भिन्न-भिन्न प्रकार की रैखिक आकृतियों के क्षेत्रफल ज्ञात करने के सूत्र भी हैं।

1.2.1 भारतीय अंक संकेत

संसार के अनेक देशों में आज जिन अंक संकेतों का प्रयोग हो रहा है, वे ये हैं 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0 रोमन अंक संकेत I, II, III, IV, V, X इत्यादि है। रोमन अंकलिपि में 'स्थानीय मान' व

'शून्य' का अभाव होने से बड़ी संख्याएँ लिखने में अनेक अंक चिह्नों का प्रयोग करना पड़ता है। इससे बड़ी संख्याएँ लिखने में कठिनाई होती है। जैसे '1759' को रोमन अंक संकेतों में इस प्रकार लिखा जाता है- 1759 = (MDCCLIX), M = 1000, D = 500, C = 100, L = 50, IX = 9 भारतीय अंक संकेत में स्थानीय मान व '0' की सहायता से बड़ी से बड़ी संख्या को आसानी से व्यक्त किया जा सकता है। भारतीयों द्वारा विकसित इस प्रणाली के बारे में शेष विश्व को बगदाद के विद्वान अलख्वारिज़मी की पुस्तक 'हिसाब अल-जबर वल-मुकाबलाह' के द्वारा जानकारी प्राप्त हुई। इसी कारण इन अंकों को आज भी हिन्दु-अरेबिक अंक प्रणाली कहते हैं। भारतीय अंक संकेत जो अरबी अंक के नाम से यूरोप वाले मानते थे- रोमन अंक संकेतों की अपेक्षा अधिक सुगम, स्पष्ट व सरल थे। इसीलिए कालान्तर में यूरोप में इन अंकों का प्रचार प्रयोग बढ़ने लगा। प्राचीन अरबी गणितज्ञों ने इन अंक संकेतों को हिंदिसा या 'अल अरकम अल हिंद' (हिंद के अंक) कहा है। पश्चिमी एशिया तथा सुदूर स्पेन में ये भारतीय अंक 'गुबार' अंकों के नाम से जाने जाते थे। गुबार का अर्थ होता है- धूल। भारत में पाटी पर धूल बिछाकर ऊँगली से अंक संकेत लिखने की परम्परा रही है। इसीलिए पाटी गणित या अंक गणित को 'धूलिकर्म' भी कहा गया है। यह 'धूलि' शब्द ही अरबी में 'गुबार' बना है।

ब्राह्मीलिपि से विकसित हुए ये भारतीय अंक संकेत अरब मिस्र होते हुए यूरोप में पहुंचे हैं। अत: यह स्पष्ट है कि 1, 2, 3, 4 जिनको की हम अंग्रेजी के अंक संकेत मानते हैं वे भारतीय अंक संकेतों का ही विकसित रूप हैं।

1.2.2 अंकों पर संक्रियाएँ

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में किसी न किसी प्रकार की संख्याकन पद्धति विद्यमान थी और प्रत्येक सभ्यता ने विभिन्न संख्या पद्धतियों के उद्भव एवं विकास में कुछ न कुछ योगदान दिया। बेबिलोनिया में लगभग 2100 ई.पू. के कुछ शिलालेख (tablets) प्राप्त हुए हैं जिन पर संख्याओं 1 से 60 तक के वर्ग तथा 1 से 32 तक की संख्याओं के घन अंकित हैं। यहाँ 'वर्ग' शब्द की उत्पत्ति इस तथ्य के कारण हुई है कि दो समान संख्याओं का गुणनफल उस वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर होता है जिसकी भुजा गुणा की जा रही संख्या के संख्यात्मक मान के बराबर होती है। इसी प्रकार, a^3 में 'घन' शब्द का आधार भी ऐसा ही है। पूर्णांकीय घातांकों का वर्तमान संकेतन देकार्त (Descartes) (1637) की देन है। उनके अनुसार 'a को a से गुणा करने के लिए हम aa अथवा a^2 लिखते हैं तथा गुणनफल को एक बार पुनः a से गुणा करने के लिए a^3 लिखते हैं और इसी प्रकार लिखते चले जाते हैं..' तथापि व्यापक घातांकों के सिद्धांत इससे बहुत पहले ही ज्ञात थे।

वर्ग $a \times a = a^2$ को संख्या a से प्राप्त किया जाता है, अतः स्वाभाविक रूप से a को a^2 का मूल अर्थात् वर्गमूल कहा गया। वर्गमूल ज्ञात करने की एक विधि 'दी एलीमेंट्स' (The Elements) नामक पुस्तक में दी गई है। इस पुस्तक में अपने समय तक की यूनानी गणित की समस्त जानकारी उपलब्ध है। पुस्तक में प्राप्त वर्गमूल ज्ञात करने की विधि प्रचलित विधि से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। कुछ-कुछ

प्रचलित विधि के समान ही वर्गमूल ज्ञात करने की एक विधि एलेक्जेंड्रिया निवासी थिआन (Theon) ने षाष्ठिक (60 आधार वाली) संख्या पद्धति का उपयोग कर विकसित की। थिआन जैसी ही एक विधि का वर्णन भास्कर ने भी किया है। **अंक गणित** की पुरानी मुद्रित पुस्तकों में वर्गमूल संख्याओं को कुछ-कुछ विभाजन की पंक्ति (galley) विधि की भाँति व्यवस्थित कर, ज्ञात किया जाता था।

वर्गमूल ज्ञात करने की विधियाँ सरल से सूत्र $(a+b)^2 = a^2+2ab+b^2$ के ज्यामितीय स्वरूप पर आधारित थीं। फ्रांसीसी गणितज्ञ निकोल ऑरसम (Nicole Oresme) तथा कुछ अन्य गणितज्ञों ने घातांकों के लिए $\frac{1}{2}$ जैसी संख्याओं का प्रयोग आरंभ कर दिया था, परंतु घातांकों के सिद्धांत का संतोषजनक स्पष्टीकरण वालिस (wallis) (1655 ई.स.) द्वारा 17वीं शताब्दी में ही दिया गया।

व्यावहारिक गणित का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का। 19वीं शताब्दी में, मेसोपोटामिया में लगभग आधे मिलियन मिट्टी के शिलालेख खोदकर निकाले गए थे। इनमें से लगभग तीन सौ शिलालेख केवल गणित से संबंधित हैं। मुख्यतः इन्हीं शिलालेखों के माध्यम से ही, हम बेबीलोन (सुमेरियन भी सम्मिलित है) की प्राचीनतम ज्ञात मानव सभ्यता के व्यापारिक क्रियाकलापों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाए हैं।

इन शिलालेखों में से लगभग दो सौ शिलालेख शुद्धता सारणी शिलालेख हैं जिनमें गुणनों, व्युत्क्रमों, वर्गों, घनों एवं घातांकियों (exponentials) की सारणियाँ दी हुई हैं। विशिष्ट रूप से, हमें ऐसे शिलालेख प्राप्त होते हैं जिनमें $n=1, 2, \ldots, 10$ तथा $a=9, 16, \ldots, 100, \ldots, 225$ के लिए, a^n की सारणियाँ दी हुई हैं। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि इन शिलालेखों का प्रयोग साधारण और चक्रवृद्धि ब्याजों के परिकलनों में किया जाता था।

बाद की अधिकांशतः सभी सभ्यताओं में साधारण और चक्रवृद्धि ब्याजों की संकल्पनाएँ मिलती हैं। यूनानी, रोमन, इटेलियन, ब्रिटिश एवं यहूदी सभी ने ब्याज की चर्चा की। 16वीं और 17वीं शताब्दियों की अंकगणित की सभी पुस्तकों में इस संकल्पना को विशिष्ट स्थान दिया गया। इनमें से अनेकों पुस्तकों में, चक्रवृद्धि ब्याज परिकलित करने के लिए सारणियाँ दी हुई हैं।

भारत में भी ब्याज की संकल्पना का ज्ञान सूत्र काल (Sutra period), अर्थात् ईसा से कुछ वर्षों पूर्व हो चुका था। महावीर और भास्कर ने ब्याज पर अनेक ऐसी समस्याएँ दी हैं जो यह दर्शाती है कि ब्याज प्रतिशत के आधार पर परिकलित किया जाता था।

1.3 शून्य का अविष्कार

अंक गणित का आधार अंक प्रणाली है, जिसमें शून्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका मुख्य श्रेय संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनि (500 ई.पू.) तथा पिंगल (200 ई.पू.) को दिया जाता है। शून्य का आविष्कार वैदिक

ऋषि गृत्समद ने किया था, इस प्रकार का भी उल्लेख मिलता है।

शून्य के लिये एक चिह्न निश्चित करने का सर्वप्रथम साक्ष्य बक्शाली पांडुलिपि (300-400 ई.) में पाया जाता है। प्राचीन भारत की अंकीय पद्धति में शून्य तथा इसके चिह्न का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

गणित की अनेक विधाओं सहित शून्य एवं अनंत की अवधारणाओं पर व्यापक शोध एवं उनके अनुप्रयोग 'वराहमिहिर द्वारा स्थापित कापित्थका गुरुकुल' उज्जैन की महान देन है।

शून्य (0) का अविष्कार करने वाला भारत ही था। अरब देश में जब वैदिक गणित का प्रसार हुआ तो उस देश ने 0 शून्य को 'हिन्दसा' नाम दिया है। गणितज्ञ भास्कराचार्य ने शून्य के संबंध में लिखा है-

"शून्य (0) को किसी राशि में जोड़ने अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ने या शून्य को किसी राशि में से घटाने से राशि में कोई परिवर्तन नहीं होता है। भास्कराचार्य ने यह भी स्वीकार किया कि किसी संख्या में शून्य का भाग देने पर अनन्त प्राप्त होता है- भास्कराचार्य ने इसको 'खहर' नाम दिया है, (अ ÷ 0 = खहर)।"

1.4 स्थानीयमान :

किसी भी संख्या को शून्य सहित दस अंकों में व्यक्त करना और प्रत्येक अंक को एक निरपेक्षमान और एक स्थानीयमान देने के कारण यह अंक पद्धति वैज्ञानिक अंक पद्धति सिद्ध हुई। स्थानीय मान आधुनिक संख्या प्रणाली (हिन्दू-अरेबिक संख्या प्रणाली) की विशेषता है।

आज हम सभी गणनाओं में केवल दस अंक संकेतों का (1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 तथा 0) प्रयोग करते हैं। इन दस अंक संकेतों से हम किसी भी संख्या को व्यक्त कर सकते हैं। हम इन दस अंकों से इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि इनके असली महत्व को समझ नहीं पाते। इन अंक संकेतों में अद्‌भुत शक्ति है। इन अंक संकेतों में दोहरे मान हैं। वे निम्न प्रकार हैं

1. प्रत्येक अंक संकेत का अपना एक स्वतंत्र मूल्य है।
2. संख्या में अंकों के स्थान के आधार पर अलग-अलग मान होता है जिसे अंक का स्थानीय मान कहते हैं।

'2323' इस संख्या पर विचार करें तो 2 व 3 का स्वतंत्र मूल्य क्रमशः 2 और 3 ही है। इनके अतिरिक्त स्थानीय मान के आधार पर इकाई स्थान पर स्थित '3' का स्थानीय मान '3' ही है परन्तु सैकड़े के स्थान पर स्थित '3' का स्थानीय मान '300' है। अंक एक ही है परन्तु उनके मूल्य अलग-अलग हैं। इसी तरह '2' का मूल्य इस संख्या में '20' भी है तो 2000 भी है। इस अंक पद्धति को 'दशमिक स्थानीय मान अंक पद्धति' कहते हैं। इन दस अंक संकेतों में सबसे अद्‌भुत संकेत है शून्य' (0)। वैसे तो केवल मात्र शून्य का कोई मूल्य नहीं है परन्तु किसी अंक का सहारा लेते ही उस अंक की दस गुनी कीमत बढ़ा देती है। 5 के बाद में 0 लगाते हैं तो उसका मान 50 हो जाता है, दो शून्य लगाने पर 5 का मूल्य 500 (पाँच

सौ) हो जाता है। किसी संख्या में 0 उस स्थान पर किसी सार्थक अंक (1 से 9 तक) की अनुपस्थिति दर्शाता है। उदाहरणार्थ संख्या 305 में 0 कोई भी दहाई न होने को दर्शा रहा है।

आज सारे संसार में इसी पद्धति (दशमिक स्थानीयमान अंक पद्धति) का प्रयोग हो रहा है। इस आधार पर बड़ी से बड़ी संख्या लिख सकते हैं। इस पद्धति ने आधुनिक विज्ञान को विशेषत: गणित शास्त्र को तीव्रगति से आगे बढ़ाया है। फ्रांस के महान गणितज्ञ पीयरे लाप्लास ने लिखा है भारत ने ही हमें प्रत्येक संख्या को दस अंकों द्वारा व्यक्त करने (जिसमें प्रत्येक अंक का एक निरपेक्ष और एक स्थानीयमान है।) की अत्यंत उत्तम प्रणाली दी है। गणित के सर्वकालीन पांच श्रेष्ठ गणितज्ञों में से कार्ल फ्रैड्रिक गॉस (1777-1855) ने लिखा है 'यह भारत ही है जिसने मात्र दस प्रतीकों के द्वारा सभी संख्याओं के व्यक्त करने की निराली पद्धति विश्व को दी है। इस पद्धति में प्रत्येक प्रतीक के दो मान हैं स्थानीय मान तथा निरपेक्ष मान।

1.5 दशमलव पद्धति

वर्तमान में प्रचलित संख्या पद्धति का आधार दस है। अतः इसे दाशमिक या दशमलव प्रणाली कहते हैं। क्योंकि इसमें दस अंकों 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 की सहायता से किसी भी बड़ी से बड़ी व छोटी से छोटी संख्या को दर्शाया जा सकता है।

दस-दस के समूहों में गिनती कर संख्या को लिखना दशमलव पद्धति कहलाती है। जैसे एक हजार पांच सौ सत्ताईस वस्तुओं को गिनने की एक सरल विधि निम्न प्रकार से हो सकती है : पहले दस-दस वस्तुओं के समूह बना लें, तथा प्रत्येक दस-दस वस्तुओं के दस समूहों को इकट्ठा कर सौ-सौ के समूह बना लें, सौ-सौ के दस समूहों को मिलाकर हजार के समूह बना लें। इस प्रकार हमें इन सभी वस्तुओं से 1 हजार का समूह, 5 सौ के, 2 दस के तथा 7 अकेली वस्तुएँ मिलेगी। इसे हम $1\times1000 + 5\times100 +2\times10+7$ लिख सकते हैं। अर्थात् $1527 = 1\times1000 + 5\times100 + 2\times10+7$ इस प्रकार किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या को दशमलव प्रणाली में केवल दस अंकों की सहायता से लिख सकते हैं। गणित में दशमलव पद्धति की खोज करने वाले आर्य भट्ट ही थे। इस सिद्धांत को आज सारा संसार स्वीकार करता है।

1.6 वर्णांक प्रणाली

किसी संख्या को जब अक्षर के रूप में व्यक्त किया जाता है उसे 'कूटांक' या वर्णांक कहते हैं। प्राचीन गणितज्ञों ने इस संकल्पना का प्रयोग संख्याओं को अभिव्यक्त करने में किया था। प्राचीन काल में वर्णांक 'कूटांक' पद्धतियाँ प्रचलित थीं जिनका प्रयोग ज्योतिषादि ग्रन्थों में किया गया है।

आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ आर्यभट्टीय के प्रथम प्रकरण दशगीतिकापाद के एक श्लोक में बड़ी-बड़ी संख्याओं को लिखने के लिये वर्णमाला के अक्षरों के उपयोग कर एक सर्वथा मौलिक विधि वर्णांक प्रणाली का प्रतिपादन किया।

संदर्भ : संस्कृत में विज्ञान डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी (पृष्ठ 22)

इसके अनुसार वर्णमाला के अक्षरों को आर्यभट्ट ने अधोलिखित मान प्रदान किये।

वर्ण	अंक	वर्ण	अंक	वर्ण	अंक	वर्ण	अंक	वर्ण	अंक
क	1	च	6	ट	11	त	16	प	21
ख	2	छ	7	ठ	12	थ	17	फ	22
ग	3	ज	8	ड	13	द	18	ब	23
घ	4	झ	9	ढ	14	ध	19	भ	24
ङ	5	ञ	10	ण	15	न	20	म	25

य	र	ल	व	श	ष	स	ह
30	40	50	60	70	80	90	100

वर्णांक के रूप में अंक विद्या का प्रयोग : इसका प्रयोग केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो परस्पर मिलकर एक-दूसरे से सहमत होकर संकेतों को समझ लेते हैं। प्रेषक व प्रेप्य ही परस्पर शब्द व उससे प्राप्त संकेत को निश्चित कर लेते हैं।

जैसे- संवाददाता व संवाद ग्रहणकर्ता ने अर्कों के लिए निम्नांकित वर्ण निश्चित कर लिए। **यह निर्धारण कल्पना आधारित है- कहीं निश्चित नहीं है।**

निर्धारित वर्ण	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
अंक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10

संख्याओं के लिए शब्दों/वर्णों का प्रयोग निम्न प्रकार संभव है-

125 के लिए 'कखङ' लिख दिया जाता है। 4637 के लिए 'घचगछ' लिखकर भेज देते हैं। यह प्रणाली प्रचलित नहीं है किन्तु प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन हेतु इसकी जानकारी उपयोगी है। इस विधि की मौलिकता और नवीनता इसकी विशेषता है।

1.7 बीजगणित

भास्कराचार्य के अनुसार बीजगणित की व्याख्या : बीजगणित तथा अंकगणित में संरचना और सिद्धांत के विचार से अनेक समानताएँ हैं। इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि अंक गणित में व्यक्त (ज्ञात) राशि की बात की जाती है जबकि बीजगणित में अव्यक्त (अज्ञात) राशि की बात की जाती है। अव्यक्त राशि से तात्पर्य उस राशि से है जिसका मान प्रारंभ में ज्ञात न हो। इसे बीज राशि भी कहते हैं। इसीलिए अव्यक्त

गणित को बीजगणित कहते हैं।

भास्कराचार्य के अनुसार अंकगणित से जिन प्रश्नों को हल करने में कठिनाई होती है उन प्रश्नों को बीजगणित की सहायता से हल करना सरल हो जाता है।

बीजगणित के लिए अंग्रेजी शब्द (Algebra) एक पुस्तक के नाम किताब अल-मुहतसर फी हिसाब अल-जब्र वल-मुकाबला (Kitab al-muhtasar fi hisab Al-gabrwal-muqabalah) में से आया है। इसे बगदाद में रहने वाले मोहम्मद इब्न मूसा अबू अब्दुल्ला अल-ख्वारिज्मी (Mohammed ibn Musa abu Abdullah al-Khwarizmi) ने सन् 825 के आस-पास लिखा था, किन्तु आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त जैसे भारतीय गणितज्ञों ने इससे बहुत पहले ही इस क्षेत्र में बहुत सा काम किया था। बाद में भारतीय गणितज्ञों जैसे कि महावीर, श्रीधर और भास्कर II ने भी इस विषय में महत्वपूर्ण योगदान दिए।

बीजगणित के बीज आदिम युग में ही बोए जा चुके थे। इसे हम बीजगणित के ज्ञान का प्रथम चक्र कह सकते हैं। यहाँ ऐसी संख्या-पहेलियाँ दृष्टिगोचर होती है जिन्हें बीजगणितीय पुट से हल किया जा सकता है। अहम्स (Ahmes, 1550 ईसा पूर्व) एक पांडुलिपिक (scribe) थे जिन्होंने अपने काल के गणित-ज्ञान को पेपिरस (papyrus) पर लिखा। उनके पेपिरस पर लिखा एक प्रश्न यह है : राशि, यह पूरी, इसका सप्तांश, यह 19 है। (Mass, it whole, its seventh, it makes 19, हमारे संकेतन में यह हुआ : $x+\frac{x}{7}=19$

दूसरे चक्र में, बीजगणित ज्यामितीय रूप में यूनान में दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक बीजगणितीय संक्रियाओं को वे लाघवपूर्ण ज्यामितीय विधियों से करते थे। उदाहरणतः यूक्लिड (Euclid) की पुस्तक II में, अनेक बीजीय सर्वसमिकाओं के ज्यामितीय प्रसंस्करण मिलते हैं। ये सभी सर्वसमिकाएँ किसी-न-किसी ज्यामितीय आकृति को उपयुक्त टुकड़ों में काटकर सिद्ध की गई थीं। उदाहरण के लिए, प्रारंभिक पाइथागोरस (Pythagoreans) द्वारा सिद्ध की गई सर्वसमिका $(a+b)^2 = a^2 + 2ab + b^2$, यूक्लिड ने इस प्रकार व्यक्त की :

यदि किसी सीधी रेखा को दो भागों में बाँटा जाए, तो संपूर्ण रेखा पर बना वर्ग उसके दोनों भागों पर बने वर्ग और दोनों भागों से बने आयत के दुगुने के तुल्य होता है।

ऐसा माना जाता है कि हिन्दुओं (भारतीयों) द्वारा प्रतिपादित बीजगणित की अवधारणा भारतीय व अरबी गणितज्ञों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रही। दशमलव संख्या प्रणाली की तरह ही 825 ई. में बगदाद के अल-ख्वारिज्मी द्वारा लिखित पुस्तक से इस ज्ञान की जानकारी शेष विश्व को हुई। जिसका अर्थ 'एक ज्ञात (व्यक्त) राशि से मिलने वाली अज्ञात (अव्यक्त) राशियों को इकट्ठा करने की कला' है। इस शीर्षक में मुख्य शब्द अल-ज़बर है अर्थात 'साथ-साथ लाना' है।

भारत में 1000 ई. के बाद दो महान अंकगणित के विद्वान हुए- श्रीधर और भास्कर द्वितीय। 17वीं सदी के बाद तो गणित की अनेक शाखाओं में भारतीयों ने अनेक सिद्धांतों की विवेचना की है।

प्राचीन काल में भारत में भिन्न-भिन्न आकृतियों की यज्ञवेदियाँ बनाई जाती थी। ऋग्वेद (3000 ई.पू.) में अनेक स्थलों पर यज्ञ वेदियों का उल्लेख है। इनकी रचना द्वारा बहुत से बीजगणितीय समीकरणों का साधन होता है। अत: स्पष्ट है कि भारत में बीजगणित का आरंभ 3000 ई.पू. ही हो गया था। 'शतपथब्राह्मण' (2000 ई.पू.) में भी यज्ञ वेदियों की रचना की विधियाँ दी गई हैं। वेदियों की रचना के लिए जो ग्रंथ बनाये गए उन्हें 'शुल्व सूत्र' का नाम दिया गया। भारत में अनेक 'शुल्वसूत्र' थे। विभिन्न प्रकार की यज्ञवेदियों के निर्माण ने ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर दी जिनके लिये रेखीय (linear) और समकालिक (युगपत) Simultanlons) समीकरणों का हल ढूंढना पड़ा।

1.8 रेखागणित

भारतीय गणित के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि अपने देश में वैदिक काल में ही रेखागणित की नींव पड़ गई थी। वैदिक काल में गणित की जानकारी कल्प नामक वेदांग में सुल्व सूत्रों के रूप (3000 ई.पू.) में मिलती है। वेदी के मापन में प्रयुक्त रस्सी को सुल्व कहा जाता है। सूत्र का अर्थ है जानकारी को संक्षिप्ततम रूप में प्रस्तुत करना। पाइथोगोरस के नाम से जो प्रमेय वर्तमान में प्रचलित है, वस्तुत: उस प्रमेय की रचना विवेचना सहित शुल्व सूत्रों में (बौद्धायन शुल्व सूत्र) में हो चुकी थी।

सुल्व सूत्र उनके रचयिताओं बौद्धायन, आपस्तंभ, कात्यायन, मानव, मैत्रायण आदि के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार है (1) गरूड़वेदी, (2) कूर्म वेदी।

सुल्व सूत्र ज्यामिती के कुछ उदाहरण निम्नलिखित अनुसार है।

- त्रिभुजों, वर्गों, आयतों तथा अन्य जटिल ज्यामितीय आकारों की रचना।
- ऐसी ज्यामितीय आकारों की रचना जिनका क्षेत्रफल दिये गये आकारों के क्षेत्रफल के जोड़ या अन्तर के बराबर हो।

वृत से वर्ग अथवा वर्ग से वृत्त बनाना।

ज्यामिति के क्षेत्र में आर्यभट्ट, भास्कर प्रथम, ब्रह्मगुप्त, महावीर का विशेष उल्लेखनीय योगदान है।

आर्यभट्ट ने अपने ग्रंथ में अनेक अनुच्छेदों में ज्यामितीय विषयों का भी विवेचन किया है। इन्होंने मुख्यत: त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त के क्षेत्रफल, ठोसों के आयतन के सूत्र लिखे हैं।

भास्कर ने 'लीवावती' के 'क्षेत्र व्यवहार' नामक अध्याय में समकोण त्रिभुज, त्रिभुज व चतुर्भुज के क्षेत्रफल, वृत्त-क्षेत्रफल, गोलों के तल व आयतन आदि पर विस्तार से विवेचना की है।

रेखागणित का आधुनिक अध्ययन, युनान के गणितज्ञ यूक्लिड द्वारा उनकी पुस्तकों 'ऐलीमेंटस Elements' में वर्णित, परिभाषाओं, तर्क के आधारभूत तथ्यों और स्वयंसिद्धों के आधार पर किया जाता

है। 13 पुस्तकों के इस संग्रह में ज्यामिति के अतिरिक्त संख्या सिद्धांत व प्रारंभिक बीजगणित को भी सम्मिलित किया गया है। ऐसा माना जाता है कि इस कार्य को युक्लिड ने 323 ई.पू. में किया था।

'ज्यामिति' (geometry) शब्द यूनानी भाषा के दो शब्द 'जियो' (geo) और 'मेट्रॉन' (metron) से बना है। 'जियो' का अर्थ है पृथ्वी और 'मेट्रॉन' का अर्थ है, 'मापना'। इस प्रकार ज्यामिति के उद्‌गम को मानव सभ्यता के विकास के उस काल से जोड़ा जा सकता है, जब मनुष्य को सर्वप्रथम अपने भूमि क्षेत्रों को नापने की आवश्यकता पड़ी थी। सम्भवतः मिस्र के निवासियों ने सर्वप्रथम ज्यमिति का अध्ययन किया था। उनकी रुचि मुख्यतः क्षेत्रमिति की समस्याओं में थी। जैसे त्रिभुजों, आयतों आदि रेखीय आकृतियों का क्षेत्रफल ज्ञात करना। इसके पश्चात् बेबीलोन निवासियों ने भी भिन्न-भिन्न रेखीय आकृतियों के क्षेत्रफल ज्ञात करने के सूत्र निर्धारित किये। ये सूत्र बेबीलोन निवासियों के पुराने गणित शास्त्र 'रिण्ड पेपिरस' (Rhind Papyrus) (1650 ईसा पूर्व) में उपलब्ध है। मिस्र और बेबीलोन निवासियों, दोनों ने ही, ज्यामिती का अधिकांश उपयोग व्यवहारिक कार्यों के लिए ही किया परन्तु उसको एक क्रमबद्ध विज्ञान के रूप में विकसित करने का श्रेय यूनानियों को जाता है।

1.9 π का मान

आर्यभट्ट (476 ई.-550 ई.) पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने परिधि और व्यास के अनुपात अर्थात् पाई (π) का लगभग परिमित मान निकाला था।

चतुराधिकं शतमण्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्त्राणाम्।

अयुतद्धय विष्कम्भस्य आसन्नो वृत्तपरिणाहः॥

सौ में चार जोड़कर उसे 8 से गुणा करें और उसमें 62000 जोड़े। यह योगफल 20,000 व्यास के वृत्त की परिधि का लगभग माप होगा अर्थात् 20,000 व्यास के वृत्त की परिधि 62,832 होगी।

$$\text{पाई } (\pi) = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{62832}{20000}$$

इस प्रकार उनके अनुसार पाई = 3.1416 जो दशमलव के 4 स्थानों तक आज भी सही है।

$$\frac{\pi}{10} = 0.31415926535897932384626433832792$$

लगभग 240 ई.पू. में आर्कमिडिज ने एक इकाई वृत्त के अन्तर्गत और (Circumscribed) बहुभुजों के परिमाप की सहायता से π का मान $\frac{223}{71}$ और $\frac{22}{7}$ अर्थात् दशमलव के दो स्थानों तक शुद्ध

संदर्भ : (1) प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पृष्ठ 56, प्रकाशक विज्ञान भारती, ए-10, तुलसी भवन, सायन मुंबई, (2) गणित के इतिहास का एक परिचय (अंग्रेजी), हार्वडईव्स, प्रकाशक : हॉल्ट, रिन्हार्ट और विन्सटन, न्यूयार्क, 1964, (3) लाईफ सांईस लाइब्रेरी गणित ले. डेविड बरगामिनी, प्र. टाईम लाईफ बुक्स, हॉग्कांग

3.14 ज्ञात किया था। इसका उल्लेख उनकी पुस्तक 'वृत की माप' में मिलता है। इनके बाद अलक्जैन्ड्रिया के क्लाडियस पटोलेमी (150 ई.) व चीनी सू शुंग-शीह (Tsu Chung-Chih) ने π का मान ज्ञात करने पर कार्य किया भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट ने परिधि और व्यास के अनुपात अर्थात पाई (π) का लगभग परिमित मान निकाला था।

1.10 बौधायन सूत्र

दीर्घ चतुरस्रस्य अक्षण्या रज्जु: पार्श्वमानी तिर्यक् मानी च
यत पृथग्भूते कुरूत: तत् उभयं करोति (इति क्षेत्र ज्ञानम)
॥ 48 (1) बौधायन शुल्व सूत्र॥

इसका आशय है

एक आयत के विकर्ण पर बने वर्ग का क्षेत्रफल आयत की दोनों भुजाओं पर बने वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के बराबर होता है। हम जानते हैं कि आयत का विकर्ण तथा दो भुजाएं समकोण त्रिभुज बनाती हैं तथा समकोण त्रिभुज में कर्ण का वर्ग शेष दो भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर होता है।

समकोण त्रिभुज की भुजाओं के बीच यह संबंध पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जाना जाता है। डॉ. ब्रजमोहन ने अपनी पुस्तक गणित का इतिहास में पृष्ठ 249 पर उल्लेख किया है कि यह बात अब अधिकांश इतिहासज्ञ मानने लगे हैं कि "पाइथागोरस का प्रमेय" शुल्व सूत्रों के लेखकों को पाइथागोरस के जन्म से सैकड़ों वर्ष पहले ज्ञात हो चुका था।

यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस का जीवनकाल 572 ई.पू. से 501 ई.पू. तक माना जाता है। जबकि भारतीय गणितज्ञ बौद्धायन ने इस प्रमेय को पाइथागोरस से अनेकों वर्ष पूर्व इसके सर्वाधिक व्यापक रूप में व्यक्त किया है। अतः यह प्रमेय वास्तव में बौद्धायन प्रमेय है जिसे सुल्व प्रमेय भी कहते हैं।

1.11 त्रिकोणमिति

त्रिकोणमिति गणित की वह शाखा है जिसमें त्रिभुज की भुजाओं और कोणों में सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। यह गणित की प्राचीन एवं महत्वपूर्ण शाखा है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र एवं खगोलशास्त्र में इसका उपयोग ग्रहों के स्थान की गणना में होता था। प्राचीन भारतीय गणितज्ञों आर्यभट्ट, वराह मिहिर तथा ब्रह्मगुप्त आदि का त्रिकोणमिति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

त्रिकोणमिति की संकल्पनाओं सूत्रों तथा सारणियों का वर्णन 'सूर्यसिद्धांत' (400 ई.) वराहमिहिर के पंच सिद्धांत तथा ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धांत (630 ई.) में मिलता है।

गणित का इतिहास डॉ. ब्रजमोहन (पृष्ठ 314) में उल्लेख है कि इसमें सन्देह नहीं है कि त्रिकोणमितीय फलनों में से तीन की स्पष्ट रूप से परिभाषा सबसे पहले भारतीयों ने ही दी थी।

भारतीय 'ज्या' और 'कोज्या' यूरोपीय भाषाओं में साइन (Sine) और को साइन (Co-sine) कहलाते हैं।

वर्तमान में पाइथोगोरस के नाम से निम्न सिद्धांत प्रचलित है जो कि बौधायन सूत्र पर आधारित है।

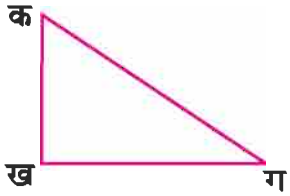

$(\text{क ग})^2 = (\text{क ख})^2 + (\text{ख ग})^2$

अर्थात समकोण त्रिभुज में आधार व लम्ब के वर्गों के योग के बराबर कर्ण की लम्बाई का वर्ग है।

त्रिकोणमिति के आधुनिक अध्ययन में मुख्य कार्य 15वीं शताब्दी के योग्य गणितज्ञ जॉन मूलर (1436-1476) की पुस्तक 'डे ट्राईएंगूलिस ओमनी मोडिस' De Triangulio omnimodis से प्रारम्भ हुआ। यह पुस्तक त्रिकोणमिति की पहली सुव्यवस्थित पुस्तक मानी जाती है। इस पुस्तक में मूलर ने यूनानी दर्शन शास्त्रीयों, अपोलोनियस, हैरो और आर्कमिडिस के कार्यों का अनुवाद भी किया था। इसके बाद यूरोप में इस विषय पर कार्य प्रगति पर रहा।

आज त्रिकोणमिति का ज्योतिष, खगोलशास्त्र, अभियांत्रिकी (engineering) एवं नौ परिवहन (Navigation) तथा ऊँचाई, दूरी आदि के अध्ययन में उपयोग है।

1.12 वैदिक गणित में अभिनव कार्य

समग्र विश्व की यह स्वीकृत अवधारणा है कि अधिकांश प्राचीन गणितीय ज्ञान का उद्भव भारत में ही हुआ है। भारतीयों का गणितीय ज्ञान वैदिक काल से ही देखने को मिलता है। अनुपम गणितज्ञ स्वामी भारती कृष्णतीर्थ ने 'वैदिक गणित' नामक ग्रंथ की रचना कर एक अभिनव कार्य किया। इस ग्रंथ में उन्होंने असाधारण 16 सूत्रों और 13 उपसूत्रों का विवरण उनके गुणधर्म और प्रयोगों के साथ दिया है।

'वैदिक गणित' नामक इस ग्रंथ में एक नितान्त नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ के चालीस अध्यायों में गुणन, भाग, गुणनखण्ड, समीकरण इत्यादि का समावेश है।

अथर्ववेद में निहित अतिसरल 16 सूत्रों की विशद व्याख्या कर गणित की शाखाओं (अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, समतल गोलीय, त्रिकोणमिति आदि) के प्रश्नों को सरलता से हल करके यह सिद्ध कर दिया कि वेदों में गणित के सिद्धांत अथाह हैं। उन सूत्रों का विश्लेषण अनेक उदाहरणों द्वारा करते हुए उन्होंने वैदिक गणित ग्रंथ की रचना की। वैदिक गणित के सूत्रों से प्रश्नों को हल करने में बहुत ही कम समय लगता है। आइए उदाहरण द्वारा समझें।

वर्ग ज्ञात करने की कुछ विशेष विधियाँ

(1) **सूत्र एकन्यूनेन पूर्वेण** अंक 9 से बनी संख्याएँ जैसे 9, 99, 999 ..... आदि का वर्ग इस सूत्र के प्रयोग से सरलता से कर सकते हैं।

उदाहरण 1 : 99^2 ज्ञात कीजिए।

हल :

99×99

98 | 01

$= 9801$

1.	उत्तर का बायां भाग 99 का एकन्यून = 98
2.	उत्तर का दायां भाग 99 – 98 = 01

(2) सूत्र एकाधिकेन पूर्वेण जिन संख्याओं की इकाई में 5 होता है उनका वर्ग इस विधि द्वारा सरलता से कर सकते हैं।

उदाहरण: 2. 85^2

हल : $85^2 = \dfrac{85 \times 85}{72 \mid 25}$

$85^2 = 7225$

1. उत्तर का बायां भाग
   दहाई × दहाई का एकाधिक
   $= 8 \times 9$
   $= 72$
2. उत्तर का दायां भाग
   $= 5 \times 5$
   $= 25$

उदाहरण 3. 105^2

हल : 105^2

$$\frac{105 \times 105}{(10 \times 11) \mid 5 \times 5}$$

$= 110 \mid 25$

अत: $105^2 = 11025$

1.12 विविध

प्राचीन ग्रंथों में 1 से लेकर 10^{53} तक की संख्याओं को अलग-अलग नाम दिये गये हैं

1. नियुतम 10^{11}
2. उत्संग 10^{21}
3. हेतुहीलम 10^{31}
4. नित्रवाद्यम 10^{41}
5. तल्लक्षणा 10^{53} आदि।

समय के मापन में कृति (1/34000 सेकंड), त्रुटि (1/300 सेकंड), विपल (0.4 सेकंड), घड़ी (24 मिनट), होरा (1 घंटा), दिवस (1 दिन) वर्ष (1 साल) तथा युग (4,32,000 वर्ष) आदि तक की इकाइयों का उल्लेख है।

इतने प्राचीन काल में भी भारतीयों को अत्यंत छोटी संख्याओं से लेकर बहुत बड़ी संख्याओं तक का ज्ञान था और उन्होंने इन्हें अलग-अलग नाम दिये थे।

मेरूप्रस्तर : हलायुध (10वीं शताब्दी) ने 1, 2, 3, 4, ... आदि संख्याओं के विभिन्न समुच्चय (Combinations) प्राप्त करने की विधि दी है। मेरूप्रस्तर और पास्कल त्रिकोण (16वी शताब्दी) कीं समानता निम्न रूप में है।

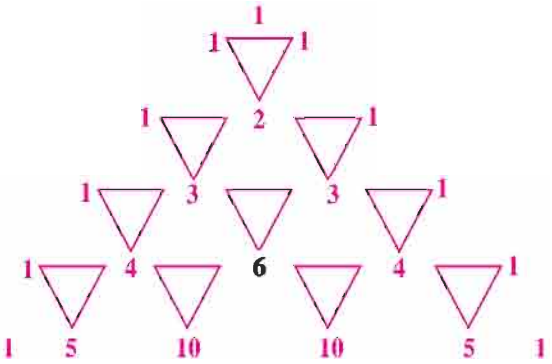

$(a+b)^0 = 1$

$(a+b)^1 = a+b$

$(a+b)^2 = a^2+2ab+b^2$

$(a+b)^3 = a^3+3a^2b+3ab^2+b^3$

$(a+b)^4 = a^4+4a^3b+6a^2b^2+4ab^3+b^4$

$(a+b)^5 = a^5+5a^4b+10a^3b^2+10a^2b^3+5ab^4+b^5$

भारत में गणित

क्रमांक	गणितज्ञ का नाम	काल (ईसवी)	ग्रंथ
1.	आर्यभट्ट (प्रथम)	476-550	आर्य भटीयम
2.	वराहमिहिर	505-587	पंचसिद्धांतिका
3.	जिनभद्र गणि	575	विशेषवास्यक भाष्य
4.	ब्रह्मगुप्त	598	ब्रह्मस्फुट सिद्धांत
5.	भास्कर (प्रथम)	629	महाभाष्करीय, लघुभाष्करीय
6.	श्रीधराचार्य	750	पाटी गणित, त्रिशतिका
7.	वीरसेन	710-790	धवलाटीका
8.	महावीराचार्य	850	गणितसार संग्रह
9.	गोविन्द स्वामी	800-850	महाभाष्करीय पर टीका
10.	पृथुदक स्वामी	850	ब्रह्मसिद्धांतवासना भाष्य
11.	वटेश्वराचार्य	904	वटेश्वर सिद्धांत
12.	आर्यभट्ट (द्वितीय)	950	महासिद्धांत
13.	श्रीपति	1039-1056	गणित तिलक
14.	भास्कराचार्य (द्वितीय)	1114-1193	सिद्धांतशिरोमणि, लीलावती
15.	माधवाचार्य	1340-1425	चन्द्रवाक्यानि
16.	नारायण पंडित	1356	गणित कौमुदी
17.	परमेश्वराचार्य	1360-1455	लीलावती सूत्र
18.	नीलकंठ सोमसुतवन	1444-1545	तन्त्र संग्रह
19.	जेष्ठदेव	1500-1610	युक्तिभाषा
20.	शंकर वरियावर	1500-1560	क्रियाक्रमकरी

संदर्भ : The History of Mathematics and Mathematicians of India. By- Er. Venugopal D. Heroor. 10-56 `Sri Dattadeepti' Jayanagar, sedrm Road, Gulbarga-585105. Karnataka

21.	पुतुमन सोमयाजी	1660-1740	करणपद्धति
22.	शंकर वर्मन	1800-1838	सद्रत्नमाला
23.	स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ	1884-1960	वैदिक गणित
24.	श्रीनिवास रामानुजन	1887-1920	संख्या सिद्धांत

प्रश्नावली 1

1. सही जोड़ी बनाइए

(1) आर्यभट्ट	वैदिक गणित
(2) भास्कराचार्य	पंच सिद्धांत
(3) ब्रह्मगुप्त	आर्य भट्टीय
(4) वराहमिहिर	सिद्धांत शिरोमणि
(5) भारती कृष्ण तीर्थ	ब्रह्मस्फुट सिद्धांत

2. गणित की व्यापकता सर्वभौम है, स्पष्ट कीजिए?
3. शून्य के अविष्कार पर प्रकाश डालिए?
4. "कापित्थका गुरुकुल उज्जैन" का गणित के क्षेत्र में क्या योगदान रहा है।
5. वर्णांक पद्धति का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
6. बौद्धायन प्रमेय क्या है?
7. पाई (π) के मान के संबंध में आर्यभट्ट का योगदान क्या है लिखिए?
8. त्रिकोणमिति की उपयोगिता किन क्षेत्रों में है लिखिए?
9. वैदिक गणित ग्रंथ के रचयिता का नाम लिखिए एवं ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए?

प्रायोगिक गतिविधियाँ (Project work)

1. अपने पुस्तकालय में गणित के प्राचीन एवं नवीन ग्रंथों का पाठन कर प्रसिद्ध गणित शास्त्रियों की जीवनियाँ लिखें। (किन्हीं दो पर)
2. भारतीय गणितज्ञों के नाम व काल (वर्ष) की सूची बनाएँ व इनके ग्रंथ के नाम लिखें।
3. अपने विद्यालय में गणित की प्रयोगशाला के लिए विभिन्न मॉडल बनाइए। (जिनमें गणितीय मॉडल व उपकरण हो।
4. अपने विद्यालय में गणित परिषद् का गठन कीजिए।